मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में पर्यावरण

* डा0 सरोज चौरसिया

भारत भौगोलिक रूप से समृद्ध देश है। चारों ओर छायी हरियाली, प्रचुर वन सम्पदा, निर्मल नीर एवं स्वच्छ वायु हमें विशेषतः प्राप्त हुई। हमारे देश में पर्यावरण को सदैव उच्च स्थान प्रदान किया गया। कवियों, दार्शनिकों और साधु–सन्तो ने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि प्रकृति के साथ उचित सामंजस्य एवं सन्तुलन रख कर ही हम जीवन में प्रसन्नता पा सकते हैं। सृष्टि रचयिता ने हमारे शरीर की संरचना के साथ जल, वायु, धरती, आकाश–जो सम्मिलित रूप में पर्यावरण का निर्माण करते हैं और जिन पर हमारा जीवन निर्भर करता है, प्रदान किए। अतः हमारे जीवन–दृष्टिकोण में प्रकृति के प्रति पूजा भाव निहित था। इसीलिए हमारे अतीत में स्वच्छ पर्यावरण कोई समस्या नहीं थी।

भारतीय साहित्य प्रकृति सौन्दर्य–जिसमें सभी ऋतुओं, प्रहरों, नदियों, पुष्पों, वृक्षों आदि का सौन्दर्य सम्मिलित है–के चित्रण से समृद्ध है, जिनमें सौन्दर्य की मनोरमता और चित्ताकर्षकता के साथ–साथ पर्यावरण की स्वच्छता के संकेत भी अप्रत्यक्षतः प्राप्त होते हैं। मैथिलीशरण गुप्त का काव्य भी इन चित्रणों से विरहित नहीं है। उनके काव्य में प्रकृति के असीम सौन्दर्य की अनेक मनोहर छवियाँ विद्यमान है। पंचवटी के निम्न चित्र में आकाश की स्वच्छता, धरती की प्रसन्नता, वायु के निर्मल प्रवाह और वृक्षों की आनन्दमग्नता का सुन्दर चित्रण है–

चारू चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही है जल–थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और अम्बर तल में
पुलक प्रकट करती है धरती

* रीडर, हिन्दी विभाग, नारी शिक्षा निकेतन, स्नातकोत्तर, महाविद्यालय

हरित तृणों की नोकों से,
मानों झूम रहे हैं तरू भी
मंद पवन के झोकों से।।

इसी प्रकार 'फैलाता है दिग्दगन्त में सुयश, सुरभि मलयानिल', 'निर्मल होकर तू तरंगिणी, जा अपने सागर की ओर' जय गंगे, आनन्द तरंगे कलरवे अमल अंचले पुण्यजले, दिव सम्भवे' आदि अनेकशः पंक्तियों में पर्यावरण के पंचतत्वों में से कहीं नदियों की निर्मलता, कहीं वायु की स्वच्छता और सुरभि के प्रसार, कहीं उनकी महिमा तो कहीं उनके प्रति अपनी निष्ठा का चित्रण किया है। भारत–भारती में गुप्त जी यह बताना नहीं भूलते कि भारत की पावन धरती पर प्रवाहित होने वाला नीर 'पीयूष' के समान तन–मन को प्रसन्न करने वाला, वायु का संचार यदि एक ओर स्वस्थता तथा दीर्घायु प्रदान करने वाला था तो दूसरी ओर उसमें सम्मिलित सुगन्ध मन को आह्लाद प्रदान करती थी।

आज पर्यावरण के प्रति संचेतना वनों के संरक्षण को अति आवश्यक मानती है। वैज्ञानिकों द्वारा वनों के विनाश के दुष्परिणामों, कहीं बाढ़, कहीं भूस्खलन और कहीं ग्लोबल वार्मिंग के रूप में, की चेतावनी दी जा रही है। वन वृक्षों के अत्यधिक भ्रष्टाचारी कटान आदि से क्षतिग्रस्त है। वनों का विनाश एक भयावह संकट के रूप में विद्यमान है। निश्चित रूप से पूर्वकाल में वनों की आवश्यकता को भली–भांति पहचाना गया था। वन हरे–भरे और फल–फूलों से सम्पन्न थे। वनों में एक पूरी पावन दुनिया बसती थी। वनों में ऋषियों–मुनियों का निवास वन संरक्षण मे अप्रत्यक्षतः सहायक था। वे अपने–अपने आश्रमों व तपोवनों में विविध यज्ञों व हवनों का विधान कर एक ओर वायु की शुद्धि में प्रयासरत थे तो दूसरी ओर वन्य जातियों के संरक्षण में सहायक थे तो तीसरी ओर चूंकि वन–सम्पदा पर ही उनका जीवन निर्भर था, तो उसकी सुरक्षा में भी वे संलग्न रहते थे। गुप्त जी के अनेक काव्यों में भव्य सघन वनों, वहां निरन्तर प्रसारित पवित्र होम धूपाग्नि, कंद–मूल की प्रचुरता, वायु की स्वच्छता एवं शुद्धता तथा समृद्ध प्राकृतिक निधि का सुन्दर

चित्रण है। एक–दो चित्र दर्शनीय है :–

(1) द्रुमो की छाया है गम्भीर
बने है सुन्दर पर्ण कुटीर
निकट ही लहराता है नीर।

(2) उपवन सा वन सघन हरा–भरा
कन्द मूल और फल फूलों से भरा–भरा.....

हरे–भरे वनों में विद्यमान निर्मल जल से भरे नदियों– सरोवरों को देखकर देवों का मन भी मोहित हो उठता था –

सरस की निहार शोभा
सुरों का भी मानस लोभा

पशु–पक्षी और पेड़–पौधे पारिवारिक सदस्यों के ही समान मानव जीवन के संगी हैं। साकेत में शुक और सारिका लक्ष्मण–उर्मिला के मध्य मधुर संवाद के केन्द्र हैं ही पर साकेत के प्रत्येक परिवार में अनेक पशु–पक्षी स्नेह सूत्र में बंध कर पले हैं। साकेत ही नहीं उनके रत्नावली, यशोधरा, किसान आदि अनेक काव्य पशुओं व पक्षियों के प्रति प्रेम से अनुस्यूत है। वे उर्मिला–यशोधरा के पति विरहित एकाकी जीवन के संगी है। वर्तमान में पक्षियों की प्रजातियों को संकट में देखकर नेशनल पार्क और सैन्चुरीज बनाने के सुझाव दिए जा रहे हैं और उन पर थोड़ा बहुत अमल भी हो रहा है पर गुप्त जी के काव्य में यह सहज ही उपलब्ध है।

साकेत में सीता का पेड़–पौधों व पक्षियों से मधुर रिश्ता है। वे बड़ी तन्मयता से पेड़–पौधों का रोपण, सिंचन व रक्षण करती है। वनवासी जीवन में वही उनके अभिन्न साथी हैं और प्रकृति उनके मनोरंजन का साधन।

भारत संस्कृति में अनेक वृक्षों यथा पीपल, बरगद आदि तथा पशु–पक्षियों (गाय, नाग आदि) के प्रति आदर व पूजन जहां एक ओर धार्मिक भावनाओं की परितुष्टि करता रहा है, वहीं उनके सरंक्षण में भी सहायक रहा है। उन्हीं वृक्षों में एक वृक्ष तुलसी है जो घर–घर में लगाई जाती है पर गुप्त जी यह बताना भी नहीं भूलते कि तुलसी वायु शोधन में भी

सहायक है :–

था पास ही तुलसी धरा
जो वायु शोधक था हरा,

गुप्त जी की यह अभिव्यक्ति इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो उठती है कि आज विकास के नाम पर सैकड़ों वर्ष पुराने वृक्षों को बेरहमी से काट दिया जाता है।

यह कटु सत्य है कि विकास की प्रक्रिया पर्यावरण की स्वाभाविक गतिविधि में हस्तक्षेप के बिना पूरी नहीं होती। कभी उद्योगों की स्थापना के लिए, कभी बांधो के निर्माण के लिए तो कभी सौन्दर्यीकरण हेतु वन और कृषि भूमि नष्ट हो जाती है। नदियों में अवैध खनन और कचरे का प्रवाह उनके अस्तित्व के लिए चुनौती बनती जा रही है। धूल, धुएं और गैसों ने वायु के संतुलन को बिगाड़ दिया है। इन सभी कारणों से अनेक प्रजातियों पर संकट खड़ा हो गया है। परिणाम स्वरूप गुप्त जी ही नहीं अनेक काव्यों में अभिव्यक्त 'लहराता हुआ नीर', 'सुयश सुरभि मलयानिल', 'स्वर्णिम आतय', 'दुग्ध धवल चाँदनी', 'झींमते हुए वृक्ष', 'नील नभ के शुभ्र धन' आदि का सुख दुलर्भ हो गया है। बसन्त के आगमन की सन्देश बाहिका कोकिल की मधुर ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती, आकाश में उड़ने वाले 'विहगों का शोर' नहीं गूंजता और वैतालिक में वर्णित 'उड़ने लगी लाल मुर्निया' कहीं दिखाई नहीं पड़ती।

गुप्त जी के काव्य में विकास जनित 'नई संक्राान्ति' का चित्रण है। आकाश में उड़ते हुए 'गति गृह विमान' समुद्र में 'दुर्ग सदृश जलयान' तथा यंत्रों की 'अनोखी खटपट, अटपट राग' ने बहुत कुछ बदल दिया है। आकाश पक्षियों की मधुर ध्वनि के स्थान पर शोर और धुएं से भर उठा है :–

नई संक्रान्ति आ गई ऊल
उड़ा वह धुआँ, उड़ी यह धूल
उभर भर रहे शून्य का भाल
धुवें के अर्ध्व फंडू धन जाल,

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कटते हुए वृक्षों की पीड़ा भी उनके काव्य में अभिव्यक्त है :–

रहें तो कितने जन सटकर ?
छंटे जाते हैं वन कटकर
सिन्धु भी रहे न अब पटकर

इसी प्रकार उनके काव्य में विविध विस्फोटकों के प्रयोग से वाष्प के विषैलीकरण का संकेत भी है और ग्लोबल वार्मिंग के संकट से अनजान 'भुवन के भंयकर भाड़' में बदलने का संकेत भी :–

भुवन बन रहा भयंकर भाड़
चने–से जिसमें भुने पहाड़

पर्यावरण में अत्यधिक मानवीय हस्तक्षेप कभी सुनामी तो कभी भूकम्प तो कभी भूस्ख्लन आदि के रूप में उसी के जीवन पर संकट बन कर खड़ा हो जाता है। गुप्त जी ने इस पर दृष्टिक्षेप किया है :–

हो रहे नित्य नए उत्पात
नित्य भूकम्प, नित्य पवि पात।

आज का बढ़ता हुआ पर्यावरणीय संकट हमें अपने नैतिक प्रतिमानों की ओर ले जाता है। हमारे संयमी और अपरिग्रही जीवन ने ही प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा की थी। उन मूल्यों की गुप्त जी ने अपने काव्यों में मुक्त कंठ से प्रशंसा की है, किन्तु आज उपभोक्तावादी, सुविधाभोगी दृष्टिकोण ने या गुप्त जी के शब्दों में 'भोगवाद' ने जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदल दिया है। न तो बढ़ती हुई लालसाओं पर कोई अंकुश रह गया है और न ही जीवन में संयम शेष बचा है। किन्तु प्रकृति हजारों वर्षों में मनुष्य के लिए जो निर्मित करती है, उसके भोग में संयम अति आवश्यक है। प्रकृति ने नैसर्गिक रूप से जो प्रदान किया है, विकास और भोग की आँधी कहीं उन्हीं के अस्तित्व के लिए संकट न बन जाये, यह भी विचारणीय है। अतः भोग के अधिकार के साथ विवेक, संयम और स्वकर्तव्यपालन का भी ध्यान रखना होगा :–

आज की उन्नति से अभिशप्त
नहीं है कौन कहां संतप्त ?
हमें निज उपवन में सविवेक
तपोवन रखना होगा एक।।

तभी गुप्त जी के अनुसार हम अपनो को सुजला सुफला बना सकते है :–

सुजला अब भी भूमि हमारी चलों करें उद्योग।
सुफला उसे बना लें मिलकर समभोगी हम लोग।।